

जैन आगमों में आयुर्वेद विषयक विवरण

□ डॉ० तेजसिंह गौड़

जैन आगम ग्रंथ मूलतः आध्यात्मिक ग्रंथ हैं। फिर भी इन ग्रंथों में प्रसंगानुसार धर्म-दर्शन के साथ ही इतर विषयों का भी विवरण उपलब्ध होता है। प्रस्तुत लघु निबंध के माध्यम से आगम ग्रंथों में उपलब्ध आयुर्वेद विषयक विवरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

जैन दृष्टि से आयुर्वेद की उत्पत्ति का विवरण नवीं शताब्दी में हुए आचार्य उप्रादित्याचार्य ने अपने आयुर्वेद ग्रंथ कल्याणकारक में इस प्रकार दिया है—

“श्री ऋषभदेव स्वामी के समवसरण में भरत चक्रवर्ती आदि भव्यों ने पहुंचकर श्री भगवंत की सविनय वन्दना की और भगवान् से निम्नलिखित प्रकार से पूछने लगे—

‘भो स्वामिन् ! पहले भोगभूमि के समय मनुष्य कल्पवृक्षों से उत्पन्न अनेक प्रकार की भोगोपभोग सामग्रियों से सुख भोगते थे। यहाँ भी खूब सुख भोगकर तदनन्तर स्वर्ग पहुँचकर वहाँ भी सुख भोगते थे। वहाँ से फिर मनुष्य भव में आकर अनेक पुण्य कार्यों को कर अपने-अपने इष्ट स्थानों को प्राप्त करते थे। भगवन् ! अब भारतवर्ष को कर्मभूमि का रूप मिला है। जो चरम शरीरी हैं व उपपाद जन्म में जन्म लेने वाले हैं, उनको तो अब भी अपमरण नहीं है। उनको दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है। परन्तु ऐसे भी बहुत से मनुष्य पैदा होते हैं जिनकी आयु लम्बी नहीं रहती और उनको वात, पित्त, कफादि दोषों का उद्रेक होता रहता है। उनके द्वारा कभी शांति और कभी उष्ण व कालक्रम से मिथ्या आहार सेवन करने में आता है। इसलिए अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित होते हैं। वे नहीं जानते कि कौन-सा आहार ग्रहण करना चाहिए और कौन-सा नहीं लेना चाहिये। इसलिये उनकी स्वास्थ्य-रक्षा के लिये योग्य उपाय बतावें। आप शरणागतों के रक्षक हैं। इस प्रकार भरत के प्रार्थना करने पर आदिनाथ भगवंत ने दिव्य-ध्वनि के द्वारा पुरुष लक्षण, शरीर, शरीर का भेद, दोषोत्पत्ति, चिकित्सा, कालभेद आदि सभी बातों का विस्तार से वर्णन किया। तदनन्तर उनके शिष्य गणधर व बाद के तीर्थंकरों ने व मुनियों ने आयुर्वेद का प्रकाश उसी प्रकार किया। वह शास्त्र एक समुद्र के समान है, गम्भीर है।’^१

इस विवरण से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि जैन साहित्य में आयुर्वेद की परम्परा प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के द्वारा प्ररूपित है और श्रुत-परम्परा से चली आ रही है। इस विवरण के पश्चात् हम आगम ग्रंथों में उपलब्ध आयुर्वेद विषयक उल्लेख को यहाँ प्रस्तुत करने का प्रयास करेंगे।

चिकित्सा के अंग—चिकित्सा के चार अंग होते हैं। जैसे—(१) वैद्य, (२) औषध, (३) रोगी और (४) परिचारक या परिचर्या करने वाला।^२

१. कल्याणकारक, सम्पादकीय, पृष्ठ २५-२६

२. स्थानांगसूत्र, ४।४।५।६

व्याधियों के प्रकार—व्याधियों की उत्पत्ति जिन कारणों से होती है उन्हें चार प्रकार का बताया गया है। यथा—

- (१) वातिक—वायु के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
- (२) पित्तिक—पित्त के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
- (३) श्लैष्मिक—कफ के विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।
- (४) सान्निपातिक—वात, पित्त और कफ के सम्मिलित विकार से उत्पन्न होने वाली व्याधि।^१

यदि सम्पूर्ण आगम साहित्य का अध्ययन, विवेचन किया जावे तो उसके अनुसार रोगोत्पत्ति के नौ कारण होते हैं—

- (१) अतिआहार, (२) अहिताशन, (३) अति निद्रा, (४) अति जागरण, (५) मूत्रा-वरोध (६) मलावरोध, (७) अर्धवगमन, (८) प्रतिकूल भोजन और (९) काम-विकार।

यदि इन नौ कारणों से मनुष्य बचता रहे तो उसे रोग उत्पन्न होने का भय बिल्कुल नहीं रहता।

जैन आगमों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि उसमें अहिंसा तत्त्व की प्रधानता है और उसमें अहिंसा को सर्वोपरि प्रतिष्ठापित किया गया है। आचारंगसूत्र^२ का एक उदाहरण इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है। वहाँ कहा गया है—अपने को चिकित्सा-पंडित बताते हुए कुछ वैद्य चिकित्सा में प्रवृत्त होते हैं। वह अनेक जीवों का हनन, भेदन, लुम्पन, विलुम्पन और प्राण-वध करते हैं। 'जो पहले किसी ने नहीं किया, ऐसा मैं करूँगा' यह मानता हुआ वह जीव-वध करता है। वह जिसकी चिकित्सा करता है, वह भी जीव-वध में सहभागी होता है।

इस प्रकार की हिंसा-प्रधान चिकित्सा करने वाले अज्ञानी की संगति से क्या लाभ! जो चिकित्सा करवाता है, वह भी अज्ञानी है। अनगार ऐसी चिकित्सा नहीं करवाता। इस प्रकार यहाँ चिकित्सा में हिंसा का निषेध किया गया है।

चिकित्सक—वैद्य या चिकित्सक चार प्रकार के कहे गये हैं। जैसे—

- (१) आत्मचिकित्सक, न परचिकित्सक—कोई वैद्य अपना इलाज करता है, किंतु दूसरे का इलाज नहीं करता।
- (२) परचिकित्सक, न आत्मचिकित्सक—कोई वैद्य दूसरे का इलाज करता है, किंतु अपना इलाज नहीं करता।
- (३) आत्मचिकित्सक भी, परचिकित्सक भी—कोई वैद्य अपना भी इलाज करता है और दूसरे का भी इलाज करता है।

१. वही, ४।४।५।१५

२. २।६।९४

(४) न आत्मचिकित्सक, न परचिकित्सक—कोई वैद्य न अपना इलाज करता है और न दूसरे का ही इलाज करता है।^१

स्थानांगसूत्र^२ में ही एक अन्य स्थान पर कायनैपुणिक का उल्लेख है, जो शरीर की इडा, पिंगला आदि नाड़ियों का विशेषज्ञ होता था, जिसे हम आज भी नाड़ीवैद्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं। दूसरे चिकित्सानैपुणिक का उल्लेख है जिसे शारीरिक चिकित्सा करने में कुशल बताया है।

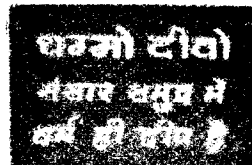
ज्ञाताधर्मकथाङ्ग^३ में चिकित्साशाला का उल्लेख है। जिसमें वेतनभोगी वैद्य तथा अन्य कर्मचारी रोगियों की सेवा-शुश्रूषा के लिए कार्यरत रहते थे। विवरण इस प्रकार है—“..... नन्द मणिकार सेठ ने पश्चिम दिशा के वनखण्ड में एक विशाल चिकित्साशाला बनवाई। वह भी अनेक सौ खंभों वाली यावत् मनोहर थी। उस चिकित्साशाला में बहुत-से वैद्य, वैद्य-पुत्र, ज्ञायक (वैद्यशास्त्र न पढ़ने पर भी अनुभव के आधार से चिकित्सा करने वाले अनुभवी), ज्ञायक-पुत्र, कुशल (अपने तर्क से ही चिकित्सा के ज्ञाता) और कुशलपुत्र आजीविका, भोजन और वेतन पर नियुक्त किये हुए थे। वे बहुत से व्याधियों की, ग्लानों की, रोगियों की और दुर्बलों की चिकित्सा करते रहते थे। उस चिकित्साशाला में दूसरे भी बहुत से लोग आजीविका, भोजन और वेतन देकर रखे गये थे। वे उन व्याधियों, रोगियों, ग्लानों और दुर्बलों की औषध, भेषज, भोजन और पानी से सेवा-शुश्रूषा करते थे।”

इस विवरण से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस काल में सार्वजनिक स्वास्थ्य के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान थी। साथ ही व्यवस्थाकर्ता का उदार दृष्टिकोण भी प्रकट होता है।

आयुर्वेद के प्रकार—आयुर्वेद^४ आठ प्रकार का बताया गया है। यथा—

१. कुमारभृत्य या कौमारभृत्य—बाल-रोगों का चिकित्साशास्त्र।
२. कायचिकित्सा—शारीरिक रोगों का चिकित्साशास्त्र।
३. शालाक्य—शलाका के द्वारा नाक, कान आदि के रोगों का चिकित्साशास्त्र।
४. शल्यहृत्या या शाल्यहृत्या—आयुर्वेद का वह अंग जिसमें शल्य-कण्टक, गोली आदि निकालने की विधि का वर्णन किया गया है। शस्त्र द्वारा चीरफाड़ करने का शास्त्र।
५. जंगोली या जांगुल—आयुर्वेद का वह विभाग जिसमें विषों की चिकित्सा का विधान है।
६. भूतविद्या—भूत, प्रेत, यक्षादि से पीड़ित व्यक्ति की चिकित्सा का शास्त्र।
७. क्षारतंत्र या बाजीकरण—बाजीकरण, वीर्यवर्धक औषधियों का शास्त्र।
८. रसायन—पारद आदि धातु-रसों आदि के द्वारा चिकित्सा का शास्त्र, अर्थात्

१. स्थानांगसूत्र ४।४।५।१७
२. ९।२८
३. १३।१७
४. स्थानांगसूत्र, ८।२६, विपाकसूत्र, १।७।८



आयु को स्थिर करने वाली व व्याधि-विनाशक औषधियों का विधान करने वाला प्रकरण-विशेष ।

विपाकसूत्र में आयुर्वेद के आठ प्रकारों का विवरण देकर आगे बताया गया है कि धन्वन्तरी वैद्य राजा तथा अन्य रोगियों को मांसभक्षण का उपदेश देता था, इस कारण वह (अपने पापकर्मों के कारण) काल करके छट्टी नरकपृथ्वी में उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति वाले नारकियों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।^१

आचारांगसूत्र^२ में निम्नलिखित सोलह रोगों का उल्लेख पाया जाता है—

(१) गण्डमाला, (२) कोढ़, (३) राजयक्ष्मा, (४) अपस्मार (मृगी), (५) काणत्व, (६) जड़ता (अंगोपागों में शून्यता), (७) कुणित्व (टूटापन, एक हाथ या पैर छोटा और बड़ा—विकलांग होना), (८) कुबड़ापन, (९) उदररोग (जलोदर, अपफारा, उदरशूल आदि), (१०) मूकररोग (गूंगापन), (११) शोथरोग—सूजन, (१२) भस्मकरोग, (१३) कम्पन-वात, (१४) पीठसर्पी—पंगुता, (१५) श्लीपद रोग—हाथीपगा एवं (१६) मधुमेह ।

विपाकसूत्र^३ में जिन सोलह भयंकर रोगों का उल्लेख है, वे उपर्युक्त सोलह रोगों से भिन्न हैं । यथा—

(१) श्वास, (२) कास, (३) दाह, (४) कुक्षिशूल, (५) भगन्दर, (६) अर्श, (७) अजीर्ण, (८) दृष्टिशूल, (९) मस्तक शूल, (१०) अरोचक, (११) अक्षिवेदना, (१२) कर्णवेदना, (१३) खुजली, (१४) जलोदर, (१५) कोढ़, (१६) बवासीर ।

ज्ञाताधर्मकथाङ्ग^४ में भी उपर्युक्त सोलह प्रकार के रोगों के नाम मिलते हैं, किन्तु कुछ अन्तर भी दिखाई देता है । ज्ञाताधर्मकथाङ्ग में पाये जाने वाले सोलह रोगों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) श्वास, (२) कास, (३) ज्वर, (४) दाह, (५) कुक्षिशूल, (६) भगन्दर, (७) अर्श, (८) अजीर्ण, (९) नेत्रशूल, (१०) मस्तकशूल, (११) भोजन विषयक अरुचि, (१२) नेत्रवेदना, (१३) कर्णवेदना, (१४) कंठू, (१५) दकोदर—जलोदर और (१६) कोढ़ ।

रोगियों की चिकित्सा के लिए चिकित्साशाला (अस्पताल) तो होती थी, किन्तु वैद्य अपने घरों से शास्त्रकोश लेकर निकलते थे और रोग का निदान जानकर अभ्यंग, उबटन, स्नेहपान, वमन विरेचन, अवदहन (गर्म लोहे की शलाका आदि से दागना), अवस्नान (औषधि के जल से स्नान), अनुवासना, (गुदा द्वारा पेट में तैलादि के प्रवेश कराने), वस्तिकर्म (चर्मवेष्टन द्वारा सिर आदि में तेल लगाना अथवा गुदाभाग में बत्ती आदि चढ़ाना), निरुह (एक प्रकार का विरेचन), शिरावेध (नाड़ी वेध कर रक्त निकालना), तक्षण (छुरे आदि से त्वचा आदि काटना), प्रतक्षण (त्वचा का थोड़ा भाग काटना), शिरोवस्ति (सिर में चर्मकोश बाँधकर उसमें संस्कृत तेल का पूरना), तर्पण (शरीर में तेल लगाना), पुटपाक (पाक)

१. विपाकसूत्र, १।७।९-१०

२. प्रथमश्रुतस्कंध ८।१।१७९

३. १।२२

४. १३।२१

विशेष में तैयार की हुई श्रौषधि तथा छाल, वल्ली मूल, कंद, पत्र, पुष्प, फल, बीज, शिलिका (चिरायता आदि कड़वी श्रौषधि), गुटिका श्रौषधि आदि से उपचार करते थे।^१

इस प्रकार हम देखते हैं कि जैन आगम ग्रंथ यद्यपि आध्यात्मिक ग्रंथ हैं, फिर भी प्रसंगानुसार उनमें आयुर्वेद विषयक महत्त्वपूर्ण जानकारी उपलब्ध होती है। यहाँ तो कुछ ही आगम ग्रंथों को आधार बनाया गया है, जिनमें आयुर्वेद के अंग, वैद्य के प्रकार, आयुर्वेद के प्रकार, चिकित्साशाला और चिकित्साविधि का उल्लेख प्राप्त हुआ है। यदि समय आगम साहित्य का अनुशीलन किया जाय तो मेरा दृढ़ विचार है कि आगमों से आयुर्वेद विषयक एक अच्छी पुस्तक तैयार हो सकती है। विषय विशेषज्ञों से इस दिशा में कुछ प्रयास करने का आग्रह है। इस अनुशीलन से यह भी संभव है कि वर्तमान युग में प्रचलित कुछ असाध्य रोगों के उपचार का मार्ग प्रशस्त हो।

—११ अंकपात मार्ग
गली नं. २, काजीवाड़ा
उज्जैन (म. प्र.) ४५६००६

-
१. (i) ज्ञाताधर्मकथाङ्ग, १३।२२
(ii) विपाकसूत्र, १।२३